शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

वेदों में न्याय का स्वरूप एवं दण्ड–विधान

प्राप्तिः 13.12.2022
स्वीकृतः 24.12.2022

88

डॉ० रूचिका जैन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
दिगम्बर जैन कॉलिज, बड़ौत
ईमेलः *ruchikajaindjc@gmail.com*

सारांश

मनु का कथन है कि इस संसार में पूर्णतया पवित्र मनुष्य दुर्लभ है।[1] काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य ये ६ मनुष्य के प्रबल शत्रु हैं। इनके वशीभूत होकर मनुष्य अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके अधिक से अधिक भूमि और धन पर अधिकार करना चाहता है। इसके कारण पारस्परिक कलह उत्पन्न होते हैं। सबल निर्बलों के अधिकार का हरण करने लगते हैं, अतः मात्स्य–न्याय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक मानव को अपने अधिकार के उपयोग के लिए सुविधा प्राप्त होनी चाहिए, अतः न्याय–व्यवस्था की आवश्यकता है।

न्याय का स्वरूप

न्याय का प्रयोजन है निष्पक्ष न्याय करना, अपराधी को दण्ड देना और निरपराध को दंड से मुक्त करना। इसका उत्तरदायित्व मुख्य रूप से राजा पर होता है। राजा प्रजा से कर लेता है और उसके बदले में प्रजा को संरक्षण देना, न्याय देना, उसका उत्तरदायित्व होता है। काठक संहिता में न्यायाधीश या न्यायकर्ता के लिए 'अध्यक्ष' शब्द आया है और कहा है कि राजन्य (क्षत्रिय राजा) अध्यक्ष वैश्य को दण्ड देने का अधिकारी है।[2] साथ ही यह भी कहा है कि– राजा को चाहिए कि वह न्याय संबन्धी निर्णय के लिए अपने परामर्शदाताओं में ब्राह्मण (विद्वान्) पुरोहित को रखे।[3] अथर्ववेद में न्यायाधीश के लिए 'बृहत् अधिष्ठाता' शब्द आया है।[4] इस सूक्त में वरुण देवता को न्यायाधीश राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है और कहा गया है कि वह देवता भी है और मनुष्य भी।[5]

वरुण के विषय में कहा गया है कि उसके असंख्य दूत हैं। वे सारे संसार में फैले हुए हैं। राजा वरुण सारे संसार के सभी मनुष्यों के छोटे से छोटे कार्यों को भी देखता है। मनुष्य का उठना, बैठना, चलना, गुप्त बात करना, छिपकर काम करना, सब कुछ राजा वरूण को ज्ञात हो जाता है।

वेदों में गुप्तचर के लिए 'स्पर्श' शब्द है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों से वरुण के इन गुप्तचरों का उल्लेख है और उनके द्वारा संसार के सारे समाचार ज्ञात करने का उल्लेख है।[6]

शतपथ ब्राह्मण में राजा को अभिषेक के समय दंड से आघात करके बताया गया है कि वह न्यायाधीश का कार्य करता है। वह औरों को दंड देने का अधिकारी है, परन्तु उसे भी दंड दिया जा सकता है। उसे मृत्युदंड से मुक्त किया गया है।[7]

ऋग्वेद और तैत्तिरीय संहिता में न्यायाधिकारी के लिए 'मध्यशी' शब्द आया है। साथ ही, उसे उग्र अर्थात् निर्णय में कठोर कहा गया है।[8] सायण ने मध्यमशी का व्याख्या की है – मध्यस्थता करने वाला राजा।[9] अन्यत्र इसकी व्याख्या की गई है – पक्षपातशून्यः' निष्पक्ष निर्णय देने वाला। काठक संहिता में न्यायाधिकारी के लिए 'मध्यमेष्ठ' शब्द है और कहा है कि प्रजा राजा को अपना न्यायाधिकारी बनाती है।[10]

न्याय का क्या स्वरूप है, इस विषय पर ऋग्वेद और अथर्ववेद के कुछ मंत्रों से विशेष प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद का कथन है कि सत्य और असत्य में विवाद का राजा न्याय करता है। वह सत्य की रक्षा करता है और असत्य को मारता है अर्थात् असत्य पक्ष को दंडित करता है।[11] वह अपराधी (रक्षस्) को दंड देता है और झूठ बोलने वाले को कड़ी सजा देता है। दोनों को जेल (प्रसिति) में डालता है।[12]

अथर्ववेद ने भी न्याय का यही स्वरूप दिया है। झूठ बोलने वाले को दंडित किया। और जो सत्यवादी है या निरपराध है, उसको दण्ड से मुक्त किया जाय।[13] जो झूठा है. अपराधी है, उसको किसी भी हालत में न छोड़ा जाय। अपराधी सैकड़ों बन्धनों में बांधा जाय।[14] इसका अभिप्राय यह है कि अपराधी को दंड देना और निरपराध को दोशों से मुक्त करना ही न्याय है।

पाणिनि ने न्याय शब्द का अर्थ 'अभ्रेष' लिखा है।[15] अभ्रेष का अर्थ है – जो परम्परा से प्राप्त आचार या विधि है, उसका अस्खलन या अनिराकरण न्याय है, अर्थात् परम्परागत पद्धति को ध्यान में रखते हुए निर्णय देना 'अभ्रेष' न्याय है। गोपथ ब्राह्मण में भ्रेष और अभ्रेष दो प्रकार के न्याय का वर्णन है।[16] दोनों में अन्तर यह है कि एक परम्परागत पद्धति पर आश्रित है और दूसरा स्वविवेक पर निर्भर है। न्याय में दोनों की उपयोगिता है। स्मृतिकारों ने भी स्वीकार किया है कि न्याय करते समय लोकाचार, देश, काल आदि का भी ध्यान रखना चाहिए (याज्ञवल्क्य का कथन है कि दण्ड देते समय देश, काल, बल, आयु, कर्म और आर्थिक स्थति को ध्यान में रखना चाहिए।[17] बृहत्पराशर और वृद्ध हारीत स्मृतिकारों का भी यही मत है।[18] मनु का कथन है कि देश, कुल और जाति की परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए ही निर्णय करना चाहिए।[19]

वेदों में न्यायाधीश के अधिकार और कर्तव्य, न्याय–पद्धति, साक्ष्यविधि, न्यायपालिका का स्वरूप, न्यायपालिका के अधिकारी आदि विषयों पर अधिक विवरण नहीं प्राप्त होता है। स्मृतिग्रन्थों में इस विषय पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

दंड विधान

(क) दण्ड की उपयोगिता

मनु, याज्ञवल्क्य और विष्णु स्मृतियों में तथा महाभारत में दण्ड की उपयोगिता और उसके महत्त्व पर बहुत अधिक लिखा गया है। मनु का कथन है कि ईश्वर ने राजा के कार्यों की सफलता और जीवों की रक्षा के लिए दंड की सृष्टि की थी।[20] दंड के भय से ही सारे जीव अपने–अपने कर्मों को करते हैं।[21] दंड ही राजा है, पुरुष है और नेता है।[22] दंड ही राज्य को चलाता है, वही प्रजा पर शासन करता है और उसकी रक्षा करता है। दंड सदा जागता रहता है, वही धर्म है।[23] शास्त्र के अनुसार ही दंड का प्रयोग करना चाहिए। धन–लोभ या प्रमाद से किया गया दंड धन–जन को हानि पहुँचाता है।[24] मनु ने दंड के अभाव का चित्रण करते हुए लिखा है कि यदि दंड न हो तो बलवान् निर्बलों को सताने लगेंगे। उन्हें इसी प्रकार कष्ट देंगे, जैसे लोहे की छड़ में बींधकर मछलियों को

पकाया जाता है। बलवान् निर्बलों की संपत्ति लूटकर मालिक बन बैठेंगे। किसी का किसी वस्तु पर स्वमित्व नहीं रह जाएगा।[25]

महाभारत शान्तिपर्व में भी इस विषय पर बहुत विस्तार से वर्णन है।[26] दंड का उद्देश्य है– दुष्टों का निग्रह अर्थात् दमन।[27] दंड का ही दूसरा नाम व्यवहार है और इस व्यवहार का ही नाम वेद है।[28]

सारा राजकाज और प्रशासन दंड पर ही टिका हुआ है।[29] दंडनीति ही संसार को रोके हुए है। इस दंड के अनेक रूप हैं। इसको ही लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती आदि कहते है।[30] दंड का अधिकार क्षेत्र बहुत व्यापक है। जो अपने धर्म का पालन नहीं करता है, उसे राजा अवश्य दंड दे, चाहे वह माता, पिता, भाई, स्त्री या पुरोहित (मंत्री) ही क्यों न हो।[31]

इससे स्पष्ट है कि प्रशासन के लिए दंड–व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। दंड के भय से ही बलवान् निर्बलों का शोषण नहीं कर पाते। अन्यथा राज्य में पूर्ण अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

(ख) दंड का स्वरूप

चारों वेदों में दंड शब्द का प्रयोग डंडे के अर्थ में है। न्यायविधि के रूप में उसका प्रयोग नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में दण्ड विधान के रूप में दंड शब्द का प्रयोग मिलता है। राजा भी दंडनीय होता है। उसे केवल मृत्युदंड से मुक्त किया जाता हैं।[32] आचार्य यास्ककृत निरुक्त में दण्ड शब्द का प्रयोग मिलता है। अपराधी व्यक्ति को 'दण्ड्य' कहते हैं। वह दंड पाने का अधिकारी है। यास्क ने इसी प्रसंग में दंड शब्द की निरुक्ति 'दम्' धातु से की है और आचार्य औपमन्यव को उद्धृत किया है कि 'दण्डः दमनात्'।[33] दमन का अर्थ है– अपराधी को अपराध के लिए दंड (Punishment) दिया जाय। गौतम स्मृति में भी दम् धातु से दण्ड शब्द की निष्पत्ति मानी गई है। गौतम का कथन है कि जो अदान्त अर्थात् नियन्त्रण में नहीं हैं, उन्हें नियन्त्रण में लाया जाय।[34] महाभारत ने 'दुष्टानां निग्रहः दण्डः' अर्थात् दुष्टों या अपराधियों को नियन्त्रण में रखना ही दंड कहा है।[35]

उपसंहार

स्मृतियों में सभी प्रकार के विवादों को 'व्यवहार' नाम दिया गया है। इन विवादों या अपराधों के लिए विशेष प्रकार की दंड व्यवस्था है। याज्ञवल्क्य स्मृति और उसकी टीका मिताक्षरा में सभी प्रकार के झगड़े विवाद या मुकदमों को 'व्यवहार' नाम दिया गया है। मनु ने १८ प्रकार के व्यवहारों (मुकदमों) का उल्लेख किया है।[36] वेदों में इस प्रकार विवादों का कोई विस्तृत विवरण नहीं मिलता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अपराध और दंड से संबद्ध तीन सूक्त हैं। मुख्य रूप से इन सूक्तों में ही अपराध और दंड का उल्लेख है।

संदर्भ

1. दुर्लभो हि शुचिर्नरः. मनु० ७.२२.
2. राजन्येनाध्यक्षेण वैश्यं घ्नन्ति काठक सं० २७.४.
3. तस्माद् ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रम् काठक सं० २७.४.
4. बष्हन् एषामधिष्ठाता. अ० ४.१६.१.
5. स दैवो वरुणो यश्च मानुषः. अ० ४.१६.८.
6. ऋ० १.२५.१३. ४.४.३. ६.६७.५. ७.६१.३. ७.८७.३. १०.१०.८. अ० ४.१६.४.
7. तस्माद् राजा दण्ड्यः. यदेनं दण्डवधम् अतिनयन्ति. शत० ५.४.४.७.

8. उग्रो मध्यमशीरिव. ऋग० १०.९७.१२. तैत्ति०सं० ४.२.६.४.
9. मध्यमस्थाने वर्तमानो राजा. सायण.
10. क्षत्रमेव विशो मध्यमेष्ठं करोति. काठक सं० २१.१०.
11. सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते. तयोर्यत् सत्यं यतरद् ऋजीयः, तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ऋ० ७.१०४.१२.
12. हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तम् उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते. ऋग् ०७.१०४.१३.
13. छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवादी– अति तं सृजन्तु. अ० ४.१६.६.
14. शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः. अ० ४.१६,७.
15. अष्टा० ३.३.३७.
16. अभ्रेषं नियन्ति, श्रेषं न्येति. गोपथ पूर्व० ३.२ और ३.३.
17. ज्ञात्वाऽपराधं देशं च, कालं बलमथापि वा. वयः कर्म च वित्तं च दण्डं दञ्ज्येशु पातयेत्. याज्ञ० १.३६८.
18. बृ० परा० १२.८४. वृद्ध हा० ४. १८७–१८८.
19. तद्देश–कुल–जातीनाम् अविरुद्धं प्रकल्पयेत्. मनु० ८.४६.
20. मनु० ७.१४.
21. मनु० ७.१५.
22. मनु० ७.१७.
23. दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा, दण्ड एवाभिरक्षति. दण्डः सुप्तेषु जागर्ति, दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः. मनु० ७.१८.
24. मनु० ७.१६.
25. मनु० ७.२० और २१.
26. महा० शान्ति० अध्याय १२१ और १२२.
27. दुष्टानां निग्रहो दण्डः. महा० शान्ति० १२२.४०.
28. यश्रदण्डः स दृष्टो नो, व्यवहारः सनातनः. व्यवहारश्च दृष्टो यः स वेद इति निश्चितम्. शान्ति० १२१.५६.
29. दण्डे सर्व प्रतिष्ठितम्. शान्ति० १२१.१.
30. दण्डनीतिर्जगद्धात्री दण्डो हि बहुविग्रहः. शान्ति० १२१.२४.
31. माता पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहितः. नादण्ड्यो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मे न तिष्ठति. शान्ति० १२१.६०.
32. तस्माद् राजा दण्ड्यः, यदेनं दण्डवधम् अतिनयन्ति. शत० ५.४.४.७.
33. दण्ड्यः पुरुषः, दण्डम् अर्हतीति वा. दण्डः दमनाद् इत्यौपमन्यवः. निरुक्त २.२.
34. दण्डो दमनाद् इत्याहुः, तेनादान्तान् दमयेत्. गौतम० अ० ११.
35. महा० शान्ति० १२२.४०.
36. व्यवहारः, तस्य पदं विषयः. मिता. याज्ञ० २.६.